International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746; Impact Factor: RJIF 5.34
Received: 07-10-2020; Accepted: 22-10-2020; Published: 09-11-2020
www.alleducationjournal.com
Volume 5; Issue 6; 2020; Page No. 25-28

जनजातीय आन्दोलन में विरसा मुण्डा की भूमिका

मनोज कुमार पंडित
ग्राम+पो०– गम्हरिया, थाना– मरौना, भाया– निर्मली, जिला– सुपौल, बिहार, भारत

सारांश :
बिरसा मुंडा का प्रादुर्भाव हुआ जो आगे चलकर जनजातीय आकांक्षाओं का मूर्त रूप सिद्ध हुआ। जनजातियों में मुंडा ही सर्वाधिक शोषित थे। न उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता थी और न उनके कोई अधिकार थे। वे अपने देवी–देवताओं में भी विश्वास खोते जा रहे थे क्योंकि ये शोषकों से उनकी रक्षा करने में असमर्थ थे। किन्तु बिरसा ने इन्हें एक नया धर्म, नवीन जीवन–दर्शन, नवीन आचार संहिता और जो कुछ उन्होंने खो दिया था उसे फिर से प्राप्त करने का एक कार्यक्रम दिया। सबसे बड़ी बात कि आदिवासियों को लगा कि बिरसा के माध्यम से वे अंग्रेजों को छोटानागपुर से निकाल बाहर कर सकते थे।

कूट शब्दः जनजातीय आन्दोलन, बिरसा मुंडा, नया धर्म, नवीन जीवन–दर्शन

प्रस्तावनाः
परताव मसीहा और राजनीतिज्ञ बिरसा परिस्थितियों की देन था। उसका जन्म–दिन सरकारी तौर पर हर साल 15 नवम्बर को मनाया जाता है। किन्तु वस्तुतः उसका जन्म 1874 या 1875 ई० की जुलाई में वृहस्पतिवार के दिन गड़ेरिया उलिहातू में हुआ था। यह गाँव उन दिनों थाना तमाड़ के अंतर्गत था। वह एक गरीब किसान सुगना मुंडा की चौथी संतान था। उसकी माता कदमी अयुबहातू के डीबर मुंडा की सबसे बड़ी कन्या थी। सुगना ने पाँच वर्ष की आयु में ही बिरसा को उसके ननिहाल अयुबहातू भेज दिया। वहीं उसका पालन–पोषण होने लगा। अयुबहातू से उसकी छोटी मौसी जोनी उसे अपनी ससुराल खटांगा ले गई वह एक ईसाई धर्म–प्रचारक के सम्पर्क में आया। उस धर्म–प्रचारक ने उसे पढ़ना–लिखना सिखलाया। पढ़ाई–लिखाई में वह ऐसा लीन हो जाता था कि आस–पास की भी उसे सुध नहीं रहती थी। अपनी इस आदत के लिए उसे कई बार दंडित भी होना पड़ा, जैसे एक बार उसके मौसा ने उसे इसलिए मारा–पीटा कि उसके द्वारा चराई जाने वाली बकरियों में से कुछ को भेड़ियों ने लपक लिया था। इस घटना से दुखित होकर उसने अपने सबसे बड़े भाई कोन्ता मुंडा की शरण ली और कभी–कभी बरटोली में रहा। ज्ञान की खोज में लगा बिरसा गौड़ा बेड़ा के आनन्द पंडा नामक ब्राह्मण के घर में काम करने लगा। आस–पास के गाँवों के बच्चे आनन्द पंडा से शिक्षा ग्रहण करने आया करते थे। यह ब्राह्मण गुरु अपने शिष्यों को रामायण–महाभारत की कहानियाँ सुनाया करता था। राम, कृष्ण, अर्जुन तथा भीम आदि के कृत्यों से बिरसा अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह समय निकाल कर शिकार करने भी चला जाता था। वह अच्छा निशानेबाज थी। बड़ी अच्छी बाँसुरी बजाता था। बाद में उसने शिकार करना छोड़ दिया। गौड़बेड़ा में जब वह शिक्षा ग्रहण कर रहा था तभी गौड़बेड़ा की डीम्बर–बाँध की मरम्मत में उसने अपने गुरु का प्रतिनिधित्व किया। उसकी तत्परता सराहनीय थी और लोगों की धारणा बनने लगी कि वह आगे चलकर अवश्य ख्याति प्राप्त करेगा। उसके महान बनने की भविष्यवाणी उसके शैशव–काल में ही एक वृद्धा ने की थी। संभवतः उसके होनहार होने का पूर्वाभास उसकी माता को भी था। कुंदी बरटोली में बिरसा की भेंट एक जर्मन पादरी से हो गई जो उसे बारजो ले गया। बारजो से ही उसने निम्न प्राथमिक परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। 1886 ई० में वह चाईबासा चला गया। चाईबासा से उसने उच्च प्राथमिक स्तर की परीक्षा 1890 ई० में पास की। किन्तु, यहाँ के मिशन–स्कूल का वातावरण उसे दमघोंटू जान पड़ा क्योंकि पादरीगण आदिवासी धर्म एवं संस्कृति की हमेशा शिकायत ही करते रहते थे। जल्दी ही उसे अपने माता–पिता के संग रहने के लिए चालकद जाना पड़ा जहाँ आकर वे अब बस गये थे। यहीं चालकद आगे चलकर बिरसा के अनुयायियों का तीर्थ–स्थल बन गया। बमनी के बड़ारक के यहाँ आनेवाले एक वैष्णव साधु से भी बिरसा की मुलाकात हुई। उसके प्रभाव से बिरसा पक्का शाकाहारी बन गया। उसने यज्ञोपवीत धारणा कर लिया और शुद्धता तथा धर्मपरायणता पर जोर देने लगा। वह तुलसी की उपासना करने लगा और ललाट पर चंदन–तिलक भी लगाने लगा। बिरसा के अनुयायियों के अनुसार पाटपुर में बिरसा को विष्णु भगवान का दर्शन मिला।

इस तरह बिरसा के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उसके व्यक्तित्व के निर्माण में तीन बातों का मुख्यतः प्रभाव पड़ा। प्रथम, तो ईसाई धर्म का, क्योंकि बिरसा की शिक्षा चाईबासा के मिशन स्कूल में हुई थी और उसने अपने पिता के साथ ईसाई धर्म अपनाया भी था, पर बाद में उसने यह धर्म छोड़ दिया। द्वितीय, उस पर वैष्णव धर्म का प्रभाव आनन्द पंडा के साथ सम्पर्क के कारण हुआ। तीसरे, उस पर सरदार–आन्दोलन का प्रभाव पड़ा।

उम्र होने पर सिंहभूम के संकराग्राम की एक युवती से बिरसा का विवाह हो गया। बाद में जेल से छुटने पर इसने उस युवती की चरित्रहीनता से दुखी होकर उसका परित्याग कर दिया। इसके बाद जीवन–पर्यन्त वह एकाकी जीवन व्यतीत करता रहा, यद्यपि उसके विरोधियों ने कई औरतों के साथ उसका नाम जोड़कर उसे बदनाम करने की कोशिश की।

उस समय तक कुशाग्र बुद्धि बिरसा में यह समझने की पर्याप्त क्षमता आ गई थी कि उसकी सामाजिक व्यवस्था में अनेक दोष थे जो आदिवासियों की तकलीफों के लिए जिम्मेवार थे। उसे अपने आदिवासी भाई–बंधुओं को पारम्परिक विचारों और व्यवहारों से चिपका देखकर दुःख होता था। उसने देखा कि आदिवासियों की स्थिति मध्यकालीन यूरोपीय काम्मियों–जैसी हो गई थी। पूरा जनजाति समाज किसी तरह अपना पेट पाल रहा था। न उसके पास अन्न था और न अन्न खरीदने के लिए पैसा। एक बार स्वयं बिरसा और उसके परिवार को अन्नाभाव में भूखों रहना पड़ा था। भूख से पीड़ित बिरसा ने एक कब्र खोद डाली और मृतक महिला के वस्त्र आभूषण निकालकर बाजार में बेच डाले। इस पैसे से उसने परिवार की भूख मिटाने के लिए अन्न खरीदा। उसके इस आचरण से क्षुब्ध ग्रामवासियों ने उसे समाज से बहिष्कृत कर

दिया और उसे भागकर जंगल में शरण लेनी पड़ी। वहाँ भी उसका मन दुःखी बना रहा और शांति की तलाश में उसने रात जगकर चिंतन करना तथा हरिनाम लेना आरंभ किया। वह उन सभी कीर्तनों को गया करता था जिन्हें उसने वैष्णव साधु से सीखा था। उसकी चिंतनशील प्रकृति एवं कीर्तन–पद्धति ने युवा–वर्ग को उसकी ओर आकर्षित करना शुरू किया। इस तरह बिरसा एक उपदेशकर्ता के रूप में उभरा। मुंडा, हिन्दू तथा ईसाई धर्मों के मूल सिद्धांतों से वह पूर्व–परिचित तो था ही। इन सभी धर्मों एवं स्वयं अपने संघर्षमय जीवन से उसने जो कुछ सीखा था, उन्हीं के संलयन से उसकी धार्मिक मान्यताओं ने मूर्तरूप ग्रहण किया। एस०सी० राय ने अपनी पुस्तक 'द मुंडाज ऐंड देयर कंट्री' में बिरसा एवं उसके धर्म का सही मूल्यांकन नहीं किया है। श्री राय के अनुसार एक नवीन धर्म के प्रचार का विचार बिरसा के लिए आकस्मिक था न कि सुनियोजित। नवीन धर्म के प्रचार का विचार, श्री राय के अनुसार बिरसा के मन में उस घटना के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ जो साथियों सहित उसके साथ जुलाई 1895 ई० में घटित हुई। उस पर बिजली गिर गई और रूप–रंग ही बदल गया– रक्ताभ। उसके मित्रों ने प्रचार कर दिया कि बिरसा को भगवान का संदेश मिल गया था और उस संदेश का संबंध उसी अपनी जनता की मुक्ति से था। श्री राय के मत से इसी एक घटना ने बिरसा को भगवान बना दिया। यह विश्वसनीय नहीं जान पड़ता कि आदिवासी जो तड़ित, आँधी और मेघ–ध्वनि से इतने सुपरिचित थे, विद्युतपात द्वारा बिरसा के ईश्वरीय दर्शन प्राप्त करने और स्वयं देवत्व प्राप्त कर लेने की बात मान लेते। दूसरी ओर डॉ० क्वार, सुरेश सिंह, डॉ. सच्चिदानंद, डॉ० एस० पी० सिन्हा और श्री मुचिराय मुंडा इत्यादि लेखकों ने ठीक ही लिखा है कि तत्कालीन परिस्थितियों एवं विभिन्न धर्मालम्बियों से संपर्क ने ही बिरसा को भगवान बनने में सहायता पहुँचाई। उपर्युक्त लेखकों के अनुसार दूर–दूर से, पुरुष, स्त्री, बच्चे, बूढ़े सभी प्रकार के लोग नियमित रूप से उसके उपदेशों को सुनने आया करते थे। कीर्तन के पश्चात् वह धर्म की चर्चा किया करता था। वह जनजातियों के बीच से अंधविश्वासों का उन्मूलन करना चाहता था और समझाता था कि सर्वोच्च धर्म परोपकार ही है। अनेक देवी–देवताओं की उपासना करने की जगह उसने लोगों से केवल सिंग–बोंगा की उपासना करने का आग्रह किया, क्योंकि समस्त बोंगाओं सहित सम्पूर्ण ब्रह्मांड का निर्माता भी सिंग–बोंगा ही था। प्रकृति–पूजा एवं बहुदेवोपासना के क्षेत्र में एकेश्वरवाद का उपदेश संभवतः ईसाई–सम्पर्क का प्रभाव था जो उसने खटांगा, चाईबासा तथा अन्य स्थानों पर स्थापित किया था। उसने अपने अनुयायियों से हिंसा का परित्याग करने और पशु–बलि को भी बंद करने को कहा। बमनी में रहते हुए उसने जो वैष्णव प्रभाव ग्रहण किया था, वही स्पष्टतः इसके लिए जिम्मेवार था। हड़िया सहित किसी प्रकार की शराब पीने की उसने मनाही कर दी। अपने अनुयायियों को उसने यज्ञोपवीत धारणा करने को कहा और उपासना–काल में हृदय की शुद्धता पर जोर दिया। उसके उपर्युक्त उपदेश निस्संदेह आनंद पंडा की देन थे, क्योंकि वह उसके साथ काफी समय तक रहा था। वह उपासना के लिए मंदिर आदि आवश्यक नहीं समझता था और सिंग–बोंगा को पूजा गाँव के सरना में ही की जा सकती थी। सरना में ही पूजा–अर्चना को महत्व देना पारम्परिक मुंडा उपासना–स्थली के प्रति उसके लगाव का परिचायक था। उसने प्रार्थना को एक पुस्तक भी तैयार की थी जो अब उपलब्ध नहीं है। उसने कई लोगों को ईसाई–धर्म से पुनः मुंडा–धर्म में दीक्षित कर लिया और अनेक को ईसाई बन जाने से रोका।

वयोवृद्ध मुंडा बिरसा के क्रिया–कलाप और उपदेशों से सशंकित हो उठे, क्योंकि ये समझते थे कि यदि गाँव के देवी–देवताओं तथा मृतक–पूर्वजों की आत्माओं को बलि चढ़ाकर संतुष्ट नहीं किया जाय तो गाँव पर किसी न किसी विपत्ति का आ जाना अवश्यमभावी था। जब उनके गाँवों में चेचक की बीमारी महामारी के रुप में फैल गई तो लोगों ने बिरसा को ही इसके लिए उत्तरदायी समझा और उसे गाँव से निकाल बाहर किया। किन्तु, उसे जब मालूम हुआ कि उसके माता–पिता ही चेचक से आक्रांत हो गये तब वह गाँव लौट आया। वहाँ उसने अपने माता–पिता सहित अन्य आक्रांत व्यक्तियों की भी दिन–रात सेवा की। इस तरह उसने सिद्ध कर दिया कि उसके उपदेशों और कृत्यों में एकरूपता थी। महामारी के दिनों में उसकी निःस्वार्थ सेवा से गाँव वाले अत्यधिक प्रभावित हुए और वह सबों के लिए श्रद्धा एवं प्रशंसा के पात्र बन गये।

सन् 1895 ई० में मुचिया चालकंद के निकट एक ऐसी ही महामारी फैली। इसकी सूचना मिलते ही बिरसा वहाँ भी पहुंच गया। इससे लोगों को विश्वास हो गया कि उसके स्पर्श में ही कोई जादू था और निश्चय ही उसमें कोई ईश्वरीय शक्ति थी। इस विश्वास से उसके अनुयायियों की संख्या तत्काल बढ़ गई और लोग दूर–दूर से उसके उपदेश सुनने, दर्शन करने तथा व्याधियों की शांति के लिए आने लगे। एस० सी० राय ने बिरसा के कुछ चमत्कारों का उल्लेख किया है, किन्तु वे यह समझने में असमर्थ रहे हैं कि बिरसा की ख्याति उसके तथाकथित चमत्कारों पर आधारित नहीं थी, बल्कि उसकी निःस्वार्थ सेवा, सादा जीवन एवं उच्च आचरण पर आश्रित थी। जल्दी ही लोग समझने लगे कि बिरसा में कोई अलौकिक शक्ति थी। उसकी ख्याति मुंडा–प्रदेश की दूरस्थ जगहों तक पहुँच गई और लोग उससे बड़ी–बड़ी आशायें रखने लगे। सहज–विश्वासी मुंडा और अनेक गैर–आदिवासी भी दूर–दूर से इस नये मसीहा का दर्शन करने उमड़ने लगे। इनमें लंगड़े, लूल्हे, अपंग, अंध तथा रुग्ण सभी प्रकार के लोग थे क्योंकि यह मशहूर हो गया था कि बिरसा सभी प्रकार की व्याधियों को स्पर्श–मात्र से दूर कर सकता था और यहाँ तक कि मृतकों को भी जीवित कर सकता था। एक अफवाह यह भी फैली कि उसने एक आसन्न जलप्लावन की भविष्यवाणी की थी। जिसमें एक मात्र सूखी जगह पहाड़ की वह चोटी होगी जहाँ स्वयं उसका खेमा गड़ा था। बिरसा ने संभवतः यह भी कहा था कि केवल वे ही लोग बचेंगे जो प्रलय के समय उसके निकट होंगे। दुनियां का सारा पैसा पानी बन जायेगा और सारी खेती नष्ट हो जायेगी। अतः लोगों को नय वस्त्र खरीद लेना चाहिए और खेतों में ढोरों को छोड़ देना चाहिए। एस० सी० के अनुसार कपड़ों की मांग इतनी बढ़ी कि उनका मिलना कठिन हो गया। छः सात हजार लोग चलकद में एकत्रित हो गये और बिरसा ने एक मुंडा तथा एक पौर को अपने दीवान नियुक्त किये। बिरसा स्वयं अपनी झोपड़ी से सूर्यास्त से पहले बाहर नहीं निकलता था, किन्तु कभी–कभी– दरवाजे से अपना हाथ या चेहरा बाहर दिखला देता था। ऐसा करना इसलिए जरूरी हो गया था कि उसके विषय में एक अफवाह यह भी फैल गई थी कि उसका पूरा शरीर ही स्वर्ण में परिवर्तित हो गया था। उसकी झोपड़ी के चतुर्दिक तागों का एक घेरा बना दिया गया था जिसके भीतर किसी बाहरी आदमी का प्रवेश सर्वथा वर्जित था। कहा जाता था कि यदि तागों का उपर्युक्त घेरा टूट जाता तो प्रलय को नहीं टाला जा सकता। बिरसा ने यह भी कहा था कि प्रलय के बाद वह राजा बन जायेगा और सरकार उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। यदि उसे बलपूर्वक पकड़ने की कोशिश की जायेगी तो सरकारी गोलियाँ पानी में बदल जायेंगी और यदि उसे जेल में डाल दिया जायगा तो वह स्वयं तो बाहर रहेगा, जेल में उसकी जगह एक लकड़ी का कुंदा पड़ा रहेगा। धीरे–धीरे पहलेवाली कहानी कि वह ईश्वर का दूत था अब बदल कर यह हो गई कि वह स्वयं भगवान था। उसने उन लोगों को शाप देना भी शुरू कर दिया जो उसकी बात नहीं सुन रहे थे। एक हेड कांस्टेबल को जिसे बिरसा की कार्यवाही पर नजर रखने औश्र अधिकारियों को सूचित करते रहने के लिए चलकद भेजा गया

था वहाँ से निकाल बाहर किया गया। उसकी वर्दी नदी में फेंक दी गई और बिरसा के अनुयायियों ने उसे मार भगाया।

स्थिति धीरे–धीरे गंभीर होती गई। छोटानागपुर के कमिश्नर डब्ल्यू० एच० ग्रीमले ने सुझाव दिया था कि बिरसा को एक संदिग्ध पागल अथवा शांति भंग करने की आशंका उत्पन्न करने वाली कार्रवाइयों में लगे व्यक्ति के रूप में पकड़ लिया जाय। वस्तुतः ईसाई मिशनरी बिरसा की बढ़ती लोकप्रियता को अपने धर्म प्रचार के मार्ग का बाधक मान रहे थे। इसीलिए उन्होंने उसके कार्यों को सरकार के लिए खतरनाक बतलाया। दूसरी ओर, ईसाई मिशनरियों का बिरसा के विरुद्ध विचार अतिशयोक्तिपूर्ण भले ही रहा हो, पर इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि बिरसा के उपदेशों में सरकार–विरोधी स्वर स्पष्ट था। इसका कारण यह था कि उस समय कमजोर पड़ते जा रहे सरदार–आन्दोलन के नेताओं ने देखा कि वे अपने आन्दोलन में नव–जीवन का संचार करने के लिए बिरसा की लोकप्रियता का उपयोग कर सकते थे। सरदारों ने बिरसा के प्रमुख. अनुयायियों का रूप में उसका समर्थन और प्रचार किया। बाद में सरदार–आंदोलन के प्रभाव से बिरसा के उपदेशों का स्वर भी बदल गया। अब वह मुंडाओं के अलावा किसी को भी प्रोत्साहन देने को तैयार न था। अतएव बिरसा एवं उसके सात अनुययियों के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट निर्गत किया गया। वारंट की तामीली का काम पुलिस डिप्टी सुपरिनटेंडेंट जी० आर० के० मेयर्स को सौंपा गया। मेयर्स दस सिपाहियों, मुरहू के ऐंग्लिकन मिशन के रेवरेन्ड लस्टी और बंदगांव के जमींदार बाबू जगमोहन सिंह के साथ एक अंधेरी रात को चुपचाप बिरसा की झोपड़ी में प्रविष्ट हो गया। उसे और उसके कई अनुयायियों को बंदी बनाकर राँची ले आया गया। उसे ढाई वर्षों की सजा हुई। बिरसा की गिरफ्तारी और बन्दी बनाये जाने की खबर आदिवासियों में आग की तरह फैल गई। हजारों की संख्या में आदिवासी पुरुष–महिलायें तथा बच्चे चलकद में एकत्रित हो बिरसा की सूनी झोपड़ी में पूजा–अर्चना करने लगे। सबसे अधिक उत्तेजना मुंडाओं में थी। उन्होंने सरकार के साथ एक प्रकार से लगभग असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। वे चाहते थे कि उनके धरती आबा के साथ उन्हें भी जेल भेज दिया जाय। अन्य लोग अपने 'भगवान' की मुक्ति की मांग कर रहे थे। वे उसकी जगह पर स्वयं जेल जाने को तैयार थे। बिरसा की लोकप्रियता का इससे बड़ा मापदंड क्या हो सकता था कि यद्यपि उसकी अधिकांश भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुई थीं, फिर भी वे उसके छोड़े जाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। इस तरह बिरसा–आन्दोलन का पहला चरण समाप्त हुआ। शांतिपूर्ण तरीका और अहिंसात्मक कार्रवाई इस चरण के प्रमुख लक्षण थे। इस अवधि में बिरसा ने अपने अनुयायियों का उन्नयन निःस्वार्थ सेवा, उपदेशों एवं सुनियोजित नेतृत्व द्वारा करना चाहा था। वह हमेशा शांत और अहिंसक बना रहा और उसने तथा उसके अनुयायियों ने लगभग उसी प्रकार अपनी गिरफ्तारियाँ दी जैसे बाद में महात्मा गाँधी तथा उनके अनुयायियों ने किया। बिरसा तथा 15 प्रमुख अनुयायियों को दो वर्ष सश्रम कारावास की सजा हुई। बिरसा को 50 रुपये का जुर्माना भी हुआ जिसे न चुकाने पर 6 मास उसे और जेल में रहना पड़ता। बिरसा–आंदोलन का द्वितीय चरण तब शुरू हुआ जब महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयंती के अवसर पर सजा की मियाद पूरी होने से कुछ पहले ही, 1897 ई. के उत्तरार्द्ध में, बिरसा तथा उसके 15 अनुयायियों को हजारीबाग जेल से छोड़ दिया गया। जेल से निकलते ही उसने पुनः अपने अनुयायियों को जमा करना शुरू किया। उसने अब सरकार से अंतिम फैसला कर लेने का निश्चिय किया। 1897 ई० की होलिकादहन के दिन उसने अपने प्रमुख साथियों के पास संदेश भेजा। सिम्बुआ में उन्हें एकत्रित कर उन्हें क्रांति की योजना से अवगत कराया। डोम्बारी आंदोलन का केंद्र बन गया। इसे राजनीतिक दृष्टि से चुना गया था क्योंकि हासदा क्षेत्र के मध्य स्थित होने के कारण यह विशुद्ध मुंडाओं और मुंडारी का स्थान था। मुंडा क्षेत्र के सभी स्थानों से आये मुंडाओं की एक सभा डोम्बारी में फरवरी 1898 ई० में हुई। इस सभा में विद्रोह का रास्ता अपनाने का निर्णय लिया गया। दो वर्षों तक छिपकर वह अपनी तैयारियाँ करता रहा। उसके अनुयायी गाँव–गाँव घूमकर लोगों को सरकार के विरुद्ध संगठित कर रहे थे। 1899 ई० में बिरसा अपने गुप्तवास से प्रकट हुआ। उसने अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए अपने धार्मिक सिद्धांतों को राजनीतिक जामा पहनाना शुरू किया। उसने सरकार के विरुद्ध अब खुलेआम विद्रोह का आह्वान। उसके अनुयायियों के समाज–सेवा का एक सुअवसर तब सहज ही प्राप्त हो गया जब 1898–99 ई० में सम्पूर्ण मुंडा प्रदेश में अकाल एवं महामारी का प्रकोप हो गया। उसकी निःस्वार्थ सेवा से जनजातियाँ प्रभावित तो हुई ही, स्वयं बिरसा के अनुयायियों में भी अपरिमित आत्मविश्वास जगा। जमींदारों द्वारा उसके अनुयायी अभी भी सताये जा रहे थे। बिरसा ने लोगों को उसके नेतृत्व में एकजुट होकर सभी उत्पीड़कों से लड़ने का आह्वान किया। धीरे–धीरे उसने तीर–धनुष एवं तलवारों से लैश एक बड़ी सेना तैयार कर ली। उसका एक निकट अनुयायी, गया मुंडा, इस सेना का सेनापति और बिरसा का प्रमुख मंत्री बनाया गया। पंडु मुंडा, जोहन मुंडा, रीढ़ा मुंडा, दुखन स्वासी, हाथी राम मुंडा, डेमका मुंडा तथा ठिपरु मुंडा आन्दोलन के मुख्य पदाधिकारी निर्वाचित किए गए थे। चुटिया तथा जगन्नाथ के मंदिरों पर कब्जा करने के प्रयास अथवा दोइसा की यात्रा का उद्देश्य संभवतः बिरसा–धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करना तथा मुंडा प्रदेश के गौरवपूर्ण अतीत को उजागर करना था। बिरसा–सेना के सदस्य छूटी, राँची, चक्रधरपुर, बुण्डू, तमाड़, कर्रा, तोरपा, बसिया तथा सिसई आदि में फैले हुए थे। स्वयं बिरसा एक उत्साही नेता की तरह जगह–जगह घूमकर इस सेना प्रशिक्षण, संगठन तथा मनोबल की देख–भाल करता था। उसकी सेना का मुख्यालय खूटी में था। बिरसा के अनुयायी सम्पूर्ण मुंडा–प्रदेश में जगह–जगह घूमकर इस सेना के प्रशिक्षण, संगठन तथा मनोबल की देख–भाल करते थे। बिरसा के अनुयायी सम्पूर्ण मुंडा–प्रदेश में जगह–जगह सभायें कर रहे थे। झूटी, बुण्डू, तमाड़, कर्रा, तोरपा, बसिया, सिसई, राँची, चक्रधरपुर, डुम्बारी, बुरु, रुई, टोला, काटागड़ा, कुआदा, समुआ, दोइसागढ़ और अन्य स्थानों में हुई गुप्त सभाओं में बिरसा स्वयं अपने अनुयायियों पर बीर–दा (वीर–जल) छिड़कता था। विद्रोह से पहले कई प्रकार के समारोह सम्पन्न हुए और यह सिद्ध करने के प्रयास किए गए कि बिरसा के अनुयायी अजेय थे। वास्तविक विद्रोह 25 दिसम्बर, 1899 ई० के दिन शुरू हुआ। विद्रोहियों ने सरवादा मिशन होता, मुरहू मिशन एवं बोरजो मिशन पर आक्रमण किये। बोरजो में 1 सिपाही, 4 चौकीदार मारे गए। एक दल ने राँची के जर्मन मिशन पर भी आक्रमण करने का प्रयास किया और वहाँ का एक बढ़ई मारा गया। परगना सोनपुर में एक जर्मन व्यापारी सीजर मारा गया। राँची और खूटी में भी आतंक छाया रहा। 6 जनवरी, 1900 ई० को एक पुलिस दल पर आक्रमण कर बिरसा के अनुयायियों ने एक सिपाही को मार डाला। 7 जनवरी को राँची में सूचना मिली कि बिरसा के तीन–चार सौ अनुयायी खूटी पर हमला करने ही वाले थे।

झूटी में आतंक फैला हुआ था। ईसाइयों ने मिशन के अहाते में शरण ले रखी थी और गैर–ईसाई एक स्थानीय जमींदार के घर में छिपे हुए थे। बिरसा के अनुयायी नाचते–गाते आए और उन्होंने थाना परिसर में एक झोपड़ी में आग लगा दी। थाना खाली पड़ा था किन्तु एक सिपाही ने बंदूक दिखाकर जब भीड़ को डराना चाहा तो उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिए गए।

अगले दिन अर्थात् 8 जनवरी को आयुक्त, उपायुक्त तथा अन्य अधिकारी सैनिकों की दो कम्पनियों के साथ खूटी पहुँचे। विद्रोह,

को दबाने की युद्ध–स्तर पर तैयारी होने लगी। किन्तु सरवदा के निकट कप्तान रोच द्वारा पराजित होने पर भी बिरसा के अनुयायी डोम्बारी के निकट सैल रकब में जमा होने लगे थे। ब्रिटिश फौज ने उनका पीछा किया। डोम्बारी पहाड़ पहुँचने पर उपायुक्त स्ट्रीटफिल्ड ने पहाड़ तक पहुँचने के सभी रास्तों की नाकाबंदी का आदेश दिया। 9 जनवरी को स्ट्रीटफिल्ड ने विद्रोहियों को समर्पण करने का आदेश दिया, किन्तु उसकी बात अनसुनी कर दी गयी। स्ट्रीटफिल्ड ने गोली चलाने का आदेश दिया। गोलियों की बौछार से 200 पुरुष, औरतें तथा बच्चे मारे गए। गया मुंडा की पत्नी माकी ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई। स्ट्रीटफिल्ड से लड़ने वाली औरतों में से कम से कम दो ने छोटे बच्चे को गोद में लिए युद्ध किया। किन्तु तीर–धनुष से गोला–बारुद का मुकाबला कब तक होता। अतः बिरसा के अनुयायियों की पराजय हुई और प्रायः 300 लोग बंदी बना लिए गए। वस्तुतः सईलरकब कांड के बाद आन्दोलन में बिखराव शुरू हो गया।

बड़े पैमाने पर पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों की हत्या करने तथा 300 से अधिक लोगों को बंदी बनाने पर भी शासक वर्ग को संतोष नहीं हुआ। अब हुआ। अंततः प्रतिवादियों की ओर से सरकार को ही वकील की व्यवस्था करनी पड़ी। इस तरह मुकदमे का स्वांग रचा गया। डब्ल्यू० एस० कट्स को इस मुकदमे की सुनवाई के लिए विशेष तौर पर भेजा गया। बिरसा तथा उसके अनुयायियों की सुनवाई उनकी अनुपस्थिति में ही हुई। समर्थकों को पुलिस ने तितर–बितर कर दिया और मुंडाओं की पैरवी के लिए जमा की गयी राशि को पुलिस ने जब्त कर लिया। बिरसा के विरुद्ध साख का भी अभाव था। मुकदमा चल ही रहा था कि 9 जून, 1990 ई० को जेल में ही बिरसा का हैजा से निधन हो गया। उसके अनुयायियों में से 581 लोगों पर मुकदमा चला। मुकदमा के दौरान और 13 लोगों की जेल में ही मृत्यु हो गई। 134 लोगों को सजा दी गयी। 2 को फांसी, 40 को आजीवन कारावास, 6 को 7 से 14 वर्ष की सजा, 18 को 6 वर्ष की सजा और 68 को शांति बनाये रखने की ताकीद। गया मुंडा और उसके पुत्र सानरे को फांसी की सजा दी गई। डोंका और माझिया मुंडा का देश–निर्वासन हुआ। गया मुंडा की पत्नी माकी, पुत्रियों एवं पुत्रवधुओं ने मुकदमा के दरम्यान जेल में तीन मास काट लिया था। अतः अनुकम्पा के आधार पर उन्हें केवल 1 दिन के कठोर कारावास की सजा मिली। इस तरह गया मुंडा का समस्त परिवार दंडित हुआ। कुरु मानकियों को उनके पद से हटाकर अन्य लोगों को उनकी जगह नियुक्त किया गया।

सरकार ने पक्षधरों को भड़कीली पोशाक, तलवा तथा मोतियों की माला तक भेंट की। टेकारी के बहादुर खां को राजा खान बहादुर खां दिलवर जंग की उपाधि दी गयी। पलामू के कई जमींदारों की बकाया मालगुजारी माफ कर दी गयी। ठकुराई छत्रधारी सिंह, भवानी बख्श राय और ठकुराई बसंत सिंह को सालाना मालगुजारी में 240 रुपया की छूट दी गयी।

स्पष्ट है कि बिरसा आन्दोलन के द्वितीय चरण का स्वस्थ क्रांतिकारी था। इस चरण में धार्मिक तथा राजनीतिक सिद्धांतों का सामंजस्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्रारंभिक बिरसा अहिंसक था, किन्तु बाद का बिरसा क्रांतिकारी एवं विद्रोही था। क्रांति के द्वितीय चरण में वह दिक्कुओं के उन्मूलन तथा विदेशियों के निष्कासन के लिए कटिबद्ध था। इस तरह बिरसा–आन्दोलन भारतीय स्वंत्रता आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण अंश था।

निष्कर्ष :

बिरसा–धर्म मुंडा हिन्दू–ईसाई तत्त्व का विचित्र सलयन था। मसीहा बिरसा तत्कालीन परिस्थितियों की देन था और उसका दर्शन समसामयिक परिवेश एवं स्थिति से प्रभावित था। मुंडा–समाज की जड़ता एवं परम्परावाद का वह विरोधी था। जमींदारों, साहुकारों तथा ईसाई धर्म–प्रचारकों की उत्पीड़क एवं शोषक नीति से वह घृणा करता था। बिरसा धर्म ने उसके अनुयायियों को एकता के सूत्र में आबद्ध किया और उन्हें एकजुट होकर उत्पीड़न तथा शोषण का विरोध करने के लिए प्रेरित किया। जमींदारों, ईसाई–धर्म–प्रचारकों तथा सरकार के विरोध की पृष्ठभूमि में यही भावना काम कर रही थी। उसके आन्दोलन का प्रथम चरण धर्मधारित था किन्तु दूसरा चरण आक्रामक, विशेषतः जमींदारों और ईसाई–धर्म–प्रचारकों के खिलाफ बिरसा में ईश्वरीय तत्वों का भी प्रत्यारोपित किया जाना इस बात का प्रमाण था कि उसका धर्म मसिहायी था। उसका धर्म स्थानीय होते हुए भी पुनरुत्थानवादी तथा रहस्यवादी था। उसका सम्पूर्ण आन्दोलन ही पुनर्गत्थानवादी था। उसकी दृष्टि मसीहावादी थी। इसमें हिन्दू धर्म के इतने तत्त्व समाहित थे कि इसे प्रधानतः सुधारवादी ही माना जाना चाहिए। उसके अनुयायियों के विषय में उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं उसी की तरह वे भी निःस्वार्थ रूप से मुंडा–समाज की सेवा में विश्वास करते थे। सरकार उनकी ओर से तभी सशंकित हुई जब उसने सरदारों तथा भूमि संबंधी अन्य आंदोलनकारियों को बिरसा के साथ सहयोग करते देखा। कुछ समय तक बिरसा–आन्दोलन को सरदारी आन्दोलन की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता रहा।

संदर्भ–सूची :

1. छोटानागपुर कमिश्नर का बंगाल सरकार को पत्र, 30 मार्च, 1990
2. के० के० फ्रीडम मुवमेंट इन बिहार, जिल्द–1, पृ० 105 हॉफमैन, जिल्द 2 पृ० 570, एस० सी० राय, द मुंडाज, पृ० 538
3. पी० जे० मूर्ति, वही, पृ० 73–81
4. एस० बी० सिन्हा, लाइफ ऐंड टाइम्स ऑफ बिरसा भगवान, पृ० 72–79
5. द इंगलिश मैन, 16 जनवरी, 1900
6. द पायोनियर, 18 जनवरी, 1900
7. जे० रीड० वही, पृ० 47
8. राँची एक्सप्रेस, 2 अक्टूबर, 1988, रवीन्द्र कुमार भगत : ''ताना आंदोलन के जकजतरा भगत।''
9. बुलेटिन ऑफ द बिहार ट्राइब्ल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जुलाई, 1960, सच्चिदानन्द, ''कल्चर चेंज इन ट्राइब्ल बिहार'', पृ० 99–103 रेखा ओ० धान, द प्रॉबलेम्स ऑफ द ताना भगत्स ऑफ राँची डिस्ट्रिक्ट, पृ० 152–160